International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-06-2025, Accepted: 20-07-2025, Published: 06-08-2025
Volume 11, Issue 3, 2025, Page No. 38-42

स्वभाषाः स्वाभिमान और संस्कृति की प्रतीक

डॉ. उमा जनागल
राजभाषा अधिकारी, राजभाषा विभाग, गेल लिमिटेड औरैया, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
यह आलेख स्वभाषा के महत्व, उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय भूमिका पर प्रकाश डालता है। भाषा न केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि वह हमारी अस्मिता, संस्कृति और स्वाभिमान की पहचान भी है। हिंदी, एक जीवंत भाषा होने के साथ–साथ, संपर्क भाषा, राजभाषा और साहित्यिक भाषा के रूप में अपने विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति करती है। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में भी यह आवश्यक है कि हम अपनी स्वभाषा को अपनाएं और उसमें आत्मनिर्भरता विकसित करें। यह आलेख हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी पक्षों को समग्रता से प्रस्तुत करता है।

मूल शब्दः स्वभाषा, स्वाभिमान, हिंदी भाषा, राजभाषा, राष्ट्रीय पहचान

परिचय
मनुष्य के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में भाषा की भूमिका केंद्रीय रही है। भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, अपितु हमारी सांस्कृतिक अस्मिता, सोचने की पद्धति एवं आत्माभिव्यक्ति का आधार है। स्वभाषा का अर्थ है अपनी भाषा, जो व्यक्ति के साथ जन्म लेती है और उसके जीवन के प्रत्येक चरण में उसकी अभिव्यक्ति की शक्ति बनती है। यह निबंध हिन्दी भाषा की बहुआयामी भूमिका पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, साहित्य, राजनीति, तकनीकी और प्रशासनिक क्षेत्र में अपनी पहचान बनाए हुए है। इस आलेख में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि भारत जैसे विविध भाषिक देश में हिन्दी ही वह सेतु है, जो राष्ट्र को एकसूत्र में बाँध सकती है।

सामग्री
इस अध्ययन हेतु प्राथमिक रूप से हिन्दी भाषा, भारतीय भाषाओं की संरचना, भाषायी नीतियाँ, ऐतिहासिक दस्तावेज, भाषाविज्ञान से संबंधित लेख, भारतीय संविधान के भाषा–संबंधी अनुच्छेद तथा समकालीन भाषायी प्रवृत्तियों से जुड़ी सामग्री को आधार बनाया गया है। साथ ही, विभिन्न साहित्यिक निबंध, भाषाविदों के विचार, प्रशासनिक दस्तावेज और समाचार–पत्रों के लेखों से भी तथ्यात्मक सामग्री एकत्रित की गई है। इन स्रोतों से प्राप्त जानकारी का विवेचन कर हिन्दी की वर्तमान स्थिति एवं उसका सांस्कृतिक व सामाजिक महत्व समझने का प्रयास किया गया है।

कार्यप्रणाली
इस लेख में गुणात्मक विश्लेषण पद्धति (Qualitative Analysis Method) का उपयोग किया गया है। शोध में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक पद्धतियों का सहारा लिया गया है। हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक यात्रा, वर्तमान उपयोगिता तथा भाषायी विविधता के संदर्भ में हिन्दी की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। इसके लिए भाषाविदों के मतों, सरकारी नीतियों तथा भाषिक प्रयोग के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों का समन्वित अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन पुस्तकालय शोध, दस्तावेज विश्लेषण तथा साहित्यिक संदर्भों के माध्यम से किया गया है।

आलेख
मनुष्य के समस्त श्रेष्ठत्व उसकी सभ्यता, संस्कृति की प्रगति के पीछे प्रमुख योगदान उसकी भाषा का रहा है। मानव एक सामाजिक प्राणी है एवं भाषा के माध्यम से ही परस्पर संव्यवहार करता आया है, जिसके कारण वह सामाजिक बनता है। भाषा सिर्फ विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है अपितु वह ज्ञान प्राप्ति का कुशल माध्यम एवं हमारी सभ्यता एवं संस्कृति की संवाहिका भी है। स्वभाषा के महत्व को आज से बहुत समय पहले दार्शनिकों एवं चिंतकों के द्वारा समझ लिया गया था। स्वभाषा को एक प्रकार से 'मातृभाषा' या हमारी 'अपनी भाषा' भी कहा जा सकता है। मातृभाषा का सम्मान किए बिना कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता है। आत्मभाषा से ही आत्मा (स्वज्ञान) का विकास संभव है। दरअसल देखा जाएँ तो आत्म मुक्ति का रास्ता 'स्वभाषा' ही है। आत्म मुक्ति से आशय बोलने, सोचने एवं समझने में स्वराज की प्राप्ति से है जो स्वभाषा से ही संभव है।
पशु–पक्षियों की यदि बात की जाएं तो वे ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से प्रतिक्रिया करते हैं किन्तु इसे भाषा कहना कठिन है। मनुष्य ने ध्वनि प्रतीकों के साथ शब्दों को जोड़कर 'वाक्य' बनाना शुरू किया एवं इस धरती पर स्वयं को बाकी सब प्रजातियों से सर्वश्रेष्ठ प्राणी के रूप में सिद्ध किया। धीरे–धीरे सभ्यता के विकास के साथ भाषा का भी विकास होता गया। इस ब्रह्मांड को देखने एवं समझने के लिए ज्ञान चक्षु 'भाषा' ही है। आधुनिक समय में मानव समाज का ज्ञान क्षेत्र का दायरा बहुत ही विस्तृत होता चला गया है। हिन्दी भाषा के शब्द भंडार की तुलना यदि अंगेजी भाषा के शब्द भंडार से की जाएँ तो हम पायेंगे कि यह अंतर थोड़ा बहुत नहीं, उम्मीद से कहीं ज्यादा है। आधुनिक जीवन के दैनिक व्यवहार में हमें भाषा के अनेक रूप दिखाई देते हैं, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है

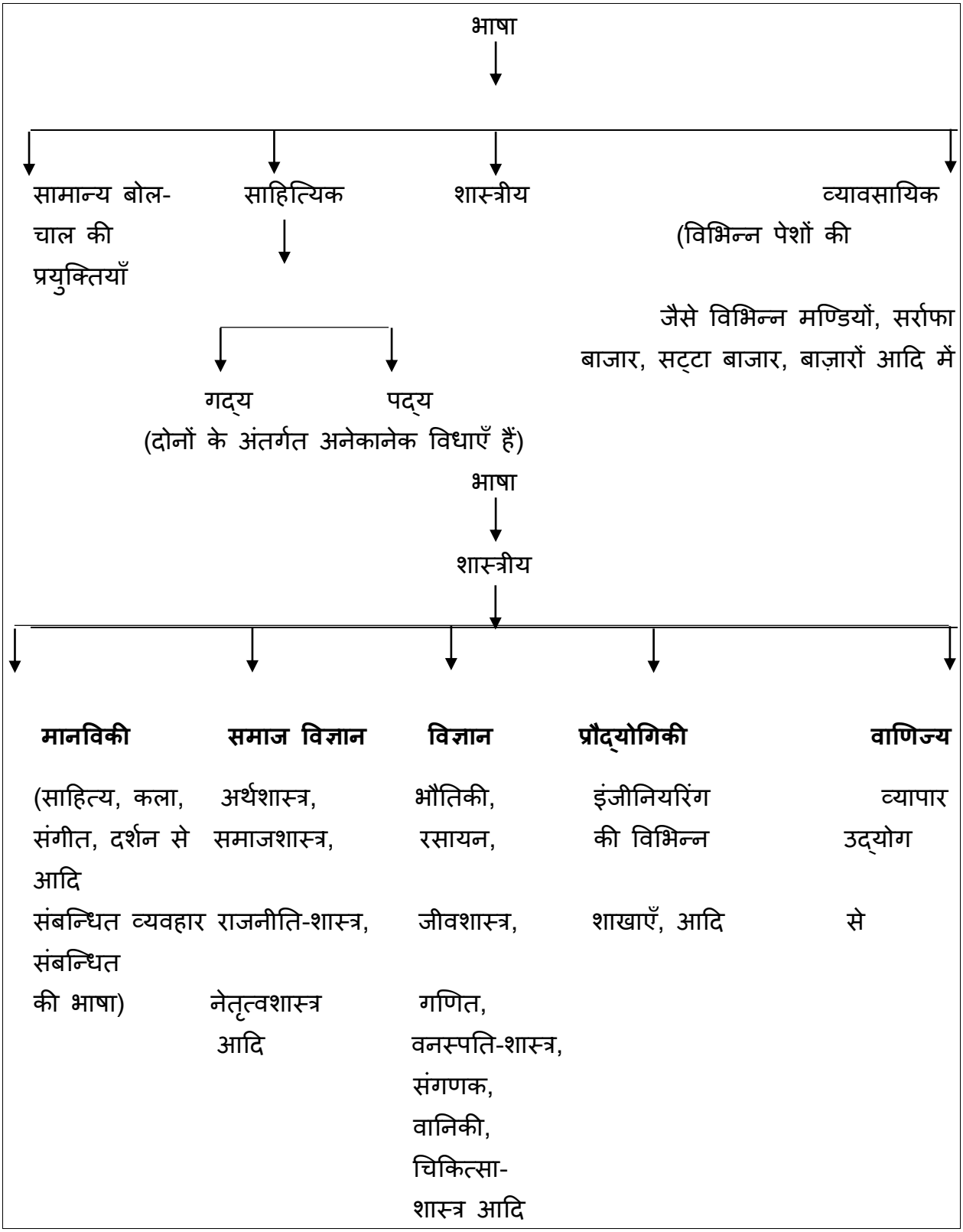

इस तरह भाषा के साहित्येतर अनेक रूप देखने को मिलते हैं। एक ही भाषा जन–भाषा, संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा, शिक्षा की माध्यम–भाषा आदि विभिन्न भूमिकाएँ निभा सकती है और निभाती भी है।

आज से बहुत समय पहले तक केवल भारतीय भाषाएँ नहीं, अपितु अनेक देशों की भाषाएँ भी अनुभव कर रही थी कि वेबसाइट और संगणक में केवल अँग्रेजी भाषा का प्रभुत्व है क्योंकि इन सभी में अँग्रेजी भाषाएँ दिखाई दे रही थी। संगणक ने व्यवहार में ऐसे शब्दों को प्रचलन में ला दिया था जो कि रोज़मर्रा की जिंदगी में ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते थे।

किसी प्राचीन कवि ने (शायद रहीम ने) कहा है कि हत्यारे और अपराधी हमेशा वारदात करने से पहले झुकते हैं ताकि अधिक सफल प्रहार कर सकें 'ये तीनों बहुतै नमै चीता, चोर, कमान।' यानी, चीता, चोर और कमान तगड़ा वार करने के लिए बहुत ही झुकते हैं। भाषा में झुकने का यह तरीका अपनी भाषा में दूसरी भाषा के लिए स्वयं प्रवेश द्वार बनाना है; और यह बनाया है उन्होंने 'लिपि' के द्वारा। हिन्दी हो या तमिल; मराठी हो या गुजराती; रोमन लिपि में अंग्रेजी के साथ आसन ग्रहण करती हुई दिखती है। चौराहे पर, पेट्रोल पंपों पर, छतों पर, राष्ट्रीय राजमार्ग के किनारे खेतों में बड़े–बड़े होर्डिंग इस 'संकर भाषा' का भरसक

विज्ञापन कर रहे हैं। अंग्रेजी के इस सौजन्य पर हम इतने मुग्ध हैं कि हमने हिन्दी और अंग्रेजी अखबारों में, यहाँ तक कि अपनी रचनाओं में हिंग्लिश का धड़ल्ले से प्रयोग शुरू कर दिया है।

इसी प्रकार भारत में अँग्रेजी के साथ हिन्दी के मिश्रित शब्दों का प्रयोग करके 'हिंग्लिश' भाषा बनी एवं फ्रांस में 'फ्रेंग्लिश'। एक समय था जब अंगेजी के साथ हिन्दी भाषा के शब्दों का उपयोग करके टूटी–फूटी भाषा का उपयोग करना कम पढ़े–लिखे होना का प्रमाण देता था, परंतु समय में तेजी से हुए परिवर्तन के कारण अब यह भाषा आधुनिकतम होने का प्रमाण दे रही है। बाजारवादी इस बात को भली प्रकार से जानते हैं कि जिस प्रकार साम्राज्यवादी दबदबा शीघ्र समाप्त हो गया था उसी प्रकार भाषायी दबदबा अधिक समय तक नहीं चल सकेगा और वे भी विनम्रता पर उतर आए है क्योंकि वे बखूबी इस बात को जानते हैं कि बाजार का एक अर्थ विनम्रता की अभिव्यक्ति और समझौता भी है।

जिस प्रकार बाजार का एक अर्थ विनम्रता है उसी प्रकार भाषा का एक अर्थ सरलता भी है। भाषा जितनी सरल होगी उतनी ही अधिकता से प्रचलन में चलायमान रहेगी। आज हमारे राष्ट्र को नितांत आवश्यकता है कि भारत देश को धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों से सुरक्षा की दृष्टि से एक राष्ट्रभाषा मिले। जब सामंतवाद था तो इस प्रकार की सुरक्षा की भावना प्रजा को राजा को देखकर मिलती थी। पूंजीवादी प्रजातन्त्र में स्थितियाँ बदल गई है एवं पूंजीपति लोग बाजार का नियंत्रण कर रहे हैं और समाज की राष्ट्र पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। भाषा के नाम पर निर्मित राज्यों में भी एक से अधिक भाषाएँ एवं बोलियाँ देखने को मिल रही है। एक शक्तिशाली राष्ट्र के लिए ऐसी भाषा चाहिए तो समान रूप से जनता को भी स्वीकार्य हो और वह स्वभाषा सिर्फ 'हिन्दी' ही हो सकती है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसकी स्थिति विशिष्ट रही है। यह एक जीवंत भाषा रही है। आज हिन्दी भाषा सभी प्रकार के प्रकार्यों को पूरा करने में सक्षम है।

भाषा के प्रयोजनमूलक क्षेत्रों को इस प्रकार से देख सकते हैं

1. राजभाषा (ऑफिशियल लैंगवेज़)
2. संपर्क भाषा (लिंक लैंगवेज़)
3. शिक्षा क्षेत्र की माध्यम भाषा (एजुकेशनल लैंगवेज़)
4. वर्ग भाषा (ग्रुप लैंगवेज़)
5. साहित्यिक भाषा (लिटरेरी लैंगवेज़)
6. तकनीकी भाषा (टेक्निकल लैंगवेज़)

यदि कोई भाषा इन सभी प्रयोजनों को सिद्द कर रही है तो इसका आशय यही मान सकते हैं कि वह भाषा समृद्द भाषा है। यदि हम थोड़ा पीछे के वर्षों में जाएँ तो हम पाएंगे कि हिन्दी भाषा की जरूरत उस समय कितनी जरूरी एवं महत्वपूर्ण थी। मैकाले और उसके पीछे पूरी ब्रिटिश सरकार के प्रयत्नों के बावजूद सन् 1951 तक भारत में अँग्रेजी का प्रतिशत मात्र 'एक' रहा। हो सकता है, मैकाले के मानस पुत्रों और उसके पीछे लगी ताकतों से यह अब कुछ बढ़ गया हो। पर दूसरी ओर हिन्दी के महत्व और उसकी गति को कोई शक्ति रोक नहीं सकी। स्वयं अंग्रेजों के विरुद्द अंग्रेज ही लड़ते रहे। इसमें सर्वाधिक शीर्ष पर नाम हैरू फ़्रेडरिक पिंकाट। ब्रिटिश सरकार से उनकी यह लड़ाई सन् 1868 ई. से प्रारंभ हो गयी थी जबकि उनकी अवस्था मात्र बत्तीस वर्ष की थी। सन् 1888 में श्री धर पाठक को लिखे पत्र में उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा था कि "बीस साल पहले मैं एकमात्र योरोपियन था, जिसने सरकार पर हिंदी के बारे में दबाव डाला और दस साल बाद इस नियम के बनवाने में सफल रहा कि भारत जाने वाले अंग्रेजों को हिंदी की परीक्षा पास करना अनिवार्य किया जाये।"

जब आज से इतने वर्षों पहले यह स्थिति थी तो आज हमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में केवल हिन्दी भाषा ही सर्वत्र दिखाई देनी चाहिए । हिन्दी भारत की राजभाषा होने के साथ– साथ करोड़ों लोगों की मातृभाषा भी है एवं देश में अधिकतम लोगों से संपर्क स्थापित करने के लिए हिन्दी भाषा अनिवार्य है। हिन्दी भाषा के द्वारा साहित्य एवं संस्कृति को भली प्रकार से समझा जा सकता है। डॉ. भोला नाथ तिवारी का कथन है– हिंदी राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा बिहार की सामान्य भाषा और राजभाषा तो है ही, पूरे भारत की घोषित राजभाषा है। शिक्षा का माध्यम, राजकाज, आदि के अतिरिक्त राज्य के स्तर पर भी अपनी भाषा के रूप में भारत इसी का प्रयोग कर रहा है।

हिन्दी भाषा को व्यापक रूप से प्रयोग में लिए जाने के कारण भारत से बाहर के देशों में भी इसकी मांग समय के साथ बढ़ी है। संपर्क भाषा होने के कारण कश्मीर से कन्याकुमारी एवं कलकत्ता से कच्छ के भू–भागों को आपस में जोड़ती है। इस विस्तार के कारण हिन्दी भाषा के अनेक रूप एवं रंग देखने को मिलते हैं। उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत की हिन्दी एवं दक्खिनी हिन्दी में अंतर अवश्य है लेकिन यह हिन्दी भाषा की समृद्धि को ही दर्शाता है। हिन्दी भाषा का यह विस्तार किसी दबाव एवं योजना के अंतर्गत नहीं हुआ अपितु स्वतः विकास हुआ। जो व्यक्ति यह मानते हैं कि संस्कृतिकरण एवं हिन्दी में तत्सम शब्दों की अधिकता के कारण इस भाषा का देश–व्यापी प्रसार होगा, यह बहुत बड़ी भूल है क्योंकि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सदैव पीछे लौटना है। भाषा का विकास भाषा का टूटना–फूटना भी है। कई हिन्दी साहित्यकार इस बात को भली प्रकार से जानते थे कि अपने देश की भाषा में बात करके ही जनता से दिल से जुड़ा जा सकता है। साथ ही स्वभाषा में रचित साहित्य से ही देश का विकास संभव हो सकता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'साहित्य की महत्ता' शीर्षक निबंध में लिखा है

आवश्यकता, अनुकूलता, अवसर और अवकाश होने पर हमें एक नहीं, अनेक भाषाएँ सीखकर ज्ञानार्जन करना चाहिए, द्वेष किसी भाषा से न करना चाहिए, ज्ञान जहां भी मिलता हो ग्रहण कर लेना चाहिए। परंतु अपनी भाषा और उसी साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए, क्योंकि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म और भाषा सदैव लोकभाषा होनी चाहिए। अतएव अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना, सभी दृष्टिकोण से हमारा परम धर्म है।

हिन्दी भाषा के विकास का लंबा इतिहास रहा है एवं सैंकड़ों वर्षों से देश की धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं संपर्क भाषा रही है। हिन्दी भाषा के विकास में पीर–फकीरों, साधु–सन्यासियों, व्यापारियों, विद्वानों, प्रशासकों, पर्यटकों अर्थात समाज के प्रत्येक स्तर के लोगों ने हिन्दी के लिए एवं हिन्दी में कार्य कर योगदान दिया है। हिन्दी भाषा अपने जन्म के साथ ही अखिल भारतीय स्तर की भाषा रही है और सर्वग्राही भाषा रही है।

हिन्दी का इतिहास भी कम लंबा और रोचक नहीं है। हिन्दी के दो अर्थ हैं– हिन्द देश के निवासी और हिन्दी भाषा। हिन्द के निवासियों को इकबाल ने हिन्दी कहा है– 'हिन्दी हैं हम, वतन है हिंदोस्ताँ हमारा।' स्पष्ट है कि 'हिन्द' से 'हिन्दी' बना। पर 'हिन्द' का इतिहास भी अंधकार के गर्त में छिपा हुआ है। यह प्रश्न कि यह शब्द कब और कहाँ से आया, कैसे बना और किनके द्वारा प्रयुक्त हुआ– आज भी समाधान की अपेक्षा रखता है।

हिन्दी भाषा आधिकारिक रूप से "राजभाषा" का दर्जा प्राप्त करने के साथ ही संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार की गई। संविधान के भाग 17 के अध्याय 1 के अनुसार 'संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि नागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के

लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।'

इस प्रकार के आदेश जारी होने के बाद से राजभाषा हिन्दी का विकास तेजी से होने लगा और भाषा का मानकीकरण होने लगा। भाषा के मानकीकरण से भाषिक समुदाय की आकांक्षाओं एवं आशाओं का गहरा संबंध होता है। अतः हमारी बोलचाल की भाषाएँ जनभाषा के रूप में बदल रही है। भाषा किसी भी देश की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान होती है एवं उसमें अप्राकृतिक तरीके से घालमेल करना उसकी पहचान को विकृत कर देता है। इस संदर्भ में हमें हमारी मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है न कि विदेशी ढाँचे पर अपनी भाषाओं को परखने की। मानसिक गुलामी से मुक्ति की प्रक्रिया एक लंबी प्रक्रिया है जिसमें 'स्वभाषा' की अहम भूमिका रही है। स्वभाषा की ताकत हमें तभी मिलेगी जब औपनिवेशिक भाषा द्वारा सृजित 'हीन भावना' से मुक्त हो पाएंगे।

भारत की बहुरंगी भाषिकता इंद्रधनुष के रंगों के समान है जिसमें भाषाओं के अलग–अलग अस्तित्व होने के बावजूद भी समन्वित सुंदर रंग योजना प्रस्तुत करने की क्षमता है। इस क्षमता का उचित उपयोग भाषाविदों एवं योजनाकारों को करना चाहिए। उन्हें अपने रूपवादी खोल से बाहर निकलकर स्वभाषा को सामाजिक संस्था के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

हमें भारत को एक भाषा क्षेत्र के रूप में देखने के बजाय विभिन्न भाषाओं के एक खास समूह के रूप में देखना चाहिए। भारत में चार भाषा परिवार महत्वपूर्ण रूप से देखने को मिलते हैं

1. आस्ट्रो–एशियाई
2. द्रविड़
3. भारोपीय
4. तिब्बती–बर्मी भाषा परिवार।

इन सभी भाषा परिवारों की अपनी विशेषताएँ और विकसित भाषाएँ है जिनका स्वतंत्र रूप से अध्ययन करना अधिक मददगार साबित हो सकता है। हमारे देश में भाषाओं की इतनी अधिक विविधता है कि उनके बीच किसी एक भाषा के द्वारा कुशल सम्प्रेषण हो पाना अत्यंत कठिन है। भारतीय परिदृश्य में द्विभाषिकता सामान्य बात हो रही है। अँग्रेजी मिश्रित हिन्दी का उपयोग महानगरों में धीरे–धीरे बढ़ रहा है एवं नए वाचिक शब्द एवं वाक्य प्रयोग में आने शुरू हो गए है। इसी प्रकार उर्दू में अरबी–फारसी के मिश्रित रूप को भी मानक बनाने की प्रवृति बढ़ती दिखाई दे रही है।

भिन्न–भिन्न भाषाओं को बोलने वाले जन–समुदाय अपनी–अपनी भाषाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिलाना चाहते हैं। किन्तु यह कभी भी संभव नहीं हो सकता है कि सभी भाषाओं को राजभाषा, संपर्क भाषा एवं शिक्षा की भाषा बनाया जा सके। भाषाएँ तो रचनात्मक साहित्य एवं संस्कृति के साथ–साथ सम्प्रेषण की वाहिका माध्यम होती है। जब सभी भाषाएँ स्वार्थ से प्रेरित होकर आपस में उच्चतम स्थान का दर्जा पाने के लिए संघर्ष करने लगे तो समस्त जनता एकता के लिए गंभीर हो जाती है। फलस्वरूप हिन्दी भाषा ने स्वभाषा का यह स्थान प्राप्त किया एवं अधिकतम व्यक्तियों द्वारा बोले जाने वाली भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित किया।

हिन्दी भाषा का विस्तार अहिंदी भाषी राज्यों में तेजी से हो रहा है जिसे नजरअंदाज करना भारत के राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से बहुत बड़ी भूल होगी। आज हिन्दी के कई रूप विकसित होते जा रहे हैं। साहित्य, आम बोलचाल, प्रशासन में इसके कई प्रकार देखे जा सकते हैं। हिन्दी भाषा बड़े स्तर पर देशी एवं विदेशी शब्दों को स्वीकार कर रही है और भारत के बड़े भू–भाग में संप्रेषण का माध्यम बन रही है। हिन्दी के मानक स्वरूप को उपयोग में लिया जाना अनिवार्य किया जाना चाहिए ताकि भाषा में सरलता के साथ–साथ सहजता भी बनी रहे। हालांकि भाषा मानवीय व्यवहार का प्रमुख अंग है।

अतः हिन्दी के साथ सभी बोलियों एवं भाषाओं को जीवंत बनाए रखना होगा जिनसे हिन्दी भाषा का आत्मीय एवं घरेलू रिश्ता है। गांवों में अक्सर खड़ी बोली को सम्मान–सूचक माना जाता है। इसी कारण सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र के लोग द्विभाषिक होते हैं। इसमें सबसे बड़ा हाथ हिन्दी का ही है। हिन्दी भाषा वह कड़ी बन जाना चाहती है जो परस्पर भारतीय भाषाओं को जोड़ें जो पूरे राष्ट्र को 'एक हृदय' बना सके एवं जो भारत की सांस्कृतिक विरासत, गौरवशाली परंपरा, उसके स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता की याद पूरे विश्व को सदैव दिलाती रहे।

आश्चर्य और दुख की बात यह है कि आज इस एतिहासिक तथ्य को भूला दिया गया है और नकल की आँधी में हम बहते जा रहे हैं। संसार भारत को भारत के रूप में देखना चाहता है, न कि इंग्लैंड, अमरेका, रूस, चीन, अरब या किसी अन्य देश की फूहड़ नकल के रूप में। यह तभी संभव है जब भारतीय के रूप में हमें अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का बोध होगा और उसकी पहचान यह होगी कि हम हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को अपने रोजमर्रा के व्यवहार, शिक्षा और दीक्षा के माध्यम एवं भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कामकाज की भाषा के रूप में हिन्दी का सहज भाव से कितनी सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं। जिस रोज भारत एक राष्ट्र के रूप में ऐसा करने का संकल्प ले लेगा, उस रोज भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक विकास के मार्ग की सारी मानसिक बाधाएँ दूर हो जाएगी और उसका वह तेज पुनः प्रकट होगा, जिसकी संसार सदैव से प्रतीक्षा कर रहा है। यह काम किसी ग्रह से आने वाला कोई प्राणी नहीं करेगा, बल्कि इसे हम भारतीयों को करना होगा।

इसलिए हमें अपनी राजभाषा का गौरव बढ़ाने के साथ–साथ अपनी स्वभाषा का गौरव भी बढ़ाना चाहिए। हमारे देश की राजनीतिक एवं सामाजिक एकता को सुदृढ़ रखने के लिए हमारी एक राष्ट्रभाषा का होना अनिवार्य है और हमारे भारत देश में वह सिर्फ और सिर्फ हिन्दी भाषा ही हो सकती है। एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब सर्वत्र हिन्दी भाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं का बोलबाला होगा और हिन्दी भाषा में मध्य में मंद ही मंद मुस्कुरा रही होगी। इन बातों को ये पंक्तियाँ पूर्ण तरह से चरितार्थ कर रही है जो इस प्रकार है

"जिस हिन्दी भाषा के खेत में, भावों को ऐसी सुनहली फसल लहलहा रही है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही उपेक्षित पड़ी रहे, पर उसकी स्वाभाविक उर्वरता अक्षुण्ण रहेगी। वहाँ फिर हरीतिमा के सुदिन आएंगे और पौष मास में फिर नवान्न उत्सव आयोजित होगा"

पूरी दुनिया के सभी विकसित राष्ट्रों का एक बहुत बड़ा हिस्सा गैर अँग्रेजी भाषा के साथ–साथ आत्म भाषा में अपने ज्ञान एवं विकास की गति को लगातार बढ़ा रहा है। ऐसे समय में विकसित होता भारतीय राष्ट्र जब स्वभाषा में स्वयं की शक्ति की कल्पना करेगा तभी उसे देश को विकसित करने की सच्ची शक्तियाँ एवं गति प्राप्त हो जाएगी। हिन्दी भाषा के विकास की पहली शर्त भी यही है कि स्वभाषा में उसके वजूद को परिकल्पित

किया जाए। हिन्दी के प्रसिद्द कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'राम की शक्ति पूजा' कविता में कहा है कि ''शक्ति की करो मौलिक कल्पना'। यह कल्पना ही एक विकसित भारत के रूप में स्वभाषा के महत्व को उजागर कर सकेगी।

आज आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना विचारणीय है। यह उद्यम देश को सशक्त बना सके, इसके लिए देश को उसकी अपनी भाषा लौटाने की आवश्यकता है। विश्व के कई देशों से प्राप्त अनुभव भी यही संकेत देता है कि देश की संप्रभुता, एकता एवं अखंडता के लिए मूल रूप से भाषा ही प्रमुख शक्ति का कार्य कर रही है। न्याय, चिकित्सा, शिक्षा एवं कई क्षेत्रों में स्वभाषा को अपनाकर ही सुखी जीवन संभव हो पाएगा और भाषाओं के बीच परस्पर सौहार्द से अमृत काल का संकल्प देश की समृद्धि को एक कदम आगे के पायदान पर ले जाएगा।

तो आइये, हम सभी मिलकर यह दृढ़ संकल्प लें कि हम अपनी संस्कृति के साथ अपनी स्वभाषा के उत्तरोतर विकास एवं संवर्धन के लिए आवश्यक प्रयत्न करेंगे और इस मुहिम को अपनी आवाज देकर इसे "राष्ट्रभाषा" का दर्जा दिलाने में योगदान देंगे।

निष्कर्ष

भारत की भाषिक विविधता उसकी सांस्कृतिक संपदा है, लेकिन एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण हेतु एक समन्वित भाषा की आवश्यकता है, जो संपर्क, शिक्षा, शासन और अभिव्यक्ति का प्रभावी माध्यम हो। हिन्दी भाषा ने इन भूमिकाओं को भली–भांति निभाया है और भविष्य में भी निभा सकती है। स्वभाषा को आत्मगौरव से अपनाकर ही हम अपनी अस्मिता को सुरक्षित रख सकते हैं। अंग्रेज़ी के मोह से ऊपर उठकर यदि हम हिन्दी को उसके यथोचित स्थान पर प्रतिष्ठित करें, तो भारत आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक गौरव के पथ पर और अधिक दृढ़ता से अग्रसर हो सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वभाषा के प्रचार–प्रसार को प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य बनाना होगा।

संदर्भ

1. हिन्दी विविध व्यवहारों की भाषा, सुवास कुमार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994,10–11.
2. हिन्दीरू कल आज और कल, प्रभाकर श्रोत्रिय, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, 120.
3. राजभाषा हिंदी, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002, 17.
4. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा किताब महल, संस्करण 2004, 214.
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचना संचयन, चयन एवं संपादन, भारत यायावर, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, 141.
6. हिन्दी भाषा का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पंद्रहवाँ संस्करण 2018, 17.
7. भारत का संविधान, डॉ. बी. आर. आंबेडकर, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सम्यक संस्करण 2023, 277.
8. कार्यालयी हिन्दी, अखिलेश बख्शी, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, 163.
9. हिन्दी विश्वभाषा के रूप में– ले. डॉ. हिमांशु जोशी– हिन्दी साहित्यरू पचास वर्ष, 255.